

कुरआन के उच्चारण (क़िराअत) के तरीकों में फ़र्क़

हमने अपनी किताब मीज़ान के प्राक्कथन में मौलिक सिद्धांतों के अन्तर्गत लिखा है कि कुरआन केवल वही है जो ग्रन्थ में लिखा है और जिसे पश्चिमी जगत के कुछ क्षेत्रों को छोड़ कर पूरी दुनिया में मुसलमानों की विशाल बहुसंख्या किसी मामूली से भी मतभेद के भी बग़ैर पढ़ती है। इस पर यह सवाल किया जा सकता है कि अगर यह मान लिया जाए कि कुरआन केवल वही है और मुसलमान अवाम हमेशा से पढ़ते पढ़ाते रहे हैं तो उनके आलिमों का व्यवहार इससे अलग क्यों है। यह आख़िर कैसे हुआ कि तफ़सीर, हदीस और फ़िक्ह के आलिमों ने इन उलूम (विज्ञानों) कत शुरूआत से ही कुरआन की बहुत सी क़िराअतों को स्वीकार किया और उन्हें एक ही दर्जे में रखा और फिर उनमें से अपने अपनी पसन्द के हिसाब से किसी एक को प्राथमिकता देते रहे यहां तक कि इमाम मालिक और इमाम शाफ़ई जैसे बड़े फ़क़ीह (शरीअत के विधि शास्त्री) और मुहद्दसि (हदीसों के संकलकर्ता) भी यह कहने में कोई संकोच नहीं करते कि उनमें से एक के नज़दीक 'नाफ़े' और दूसरे के नज़दीक 'इब्ने कसीर' की क़िराअत ज़्यादा महत्व वाली है।

इस सवाल का जवाब यह है कि इन आलिमों से बहुत पहले मुसलमानों के आलिमों की बहुसंख्या यह राय बना चुकी थी कि "अख़बार-ए-आहाद" (केवल एक ही रिवायत वाली हदीस) से मिलने वाले इल्म को प्राप्त करना आम मुसलमानों के लिए तो बेशक ज़रूरी नहीं है लेकिन उनके आलिमों और ख़ास लोगों के लिए हर हाल में ज़रूरी है और रसूल सल्ल. से उसका सिलसिला साबित हो जाने के बाद तर्क की दृष्टि से उसमें और उस इल्म में कोई फ़र्क़ नहीं किया जा सकता जो मुसलमानों में आम है और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को पहुंचता रहा है। इमाम शाफ़ई अपनी मशहूर किताब 'अलरिसाला' में लिखते हैं:

“और ख़ास लोगों का इल्म वह सुन्नत है जो उन्हीं की ख़बर से मिलती है जिसको आलिम जानते हैं और जिसके जानने का पात्र आम लोगों को नहीं ठहराया गया। यह सुन्नत सभी आलिमों के पास या उनमें से कुछ के पास रसूल सल्ल. की तरफ़ से किसी विश्वसनीय रावी (ख़बर देने वाले) की ख़बर से मौजूद होती है और यह वह इल्म है जिसकी तरफ़ इल्म वालों को ज़रूर ही देखना चाहिए” (रक़म 1330)।

चुनांचि, पैग़म्बर सल्ल. के दुनिया से चले जाने के बाद जब कुछ विश्वसनीय लोगों ने यह बयान करना शुरू किया कि उन्होंने, मिसाल के तौर पर, सूरह फ़ातिहा (1) की आयत 3 “मालिकि यौमिद्दीन” में 'मालिक' को 'मलिक' (बादशाह के अर्थ में), सूरह बकरह (2) की आयत 10 “...बिमा कानू यकज़िबून” में अक्षर 'ज़ाल' (ज़) को “युकज़िज़बून” और सूरह निसा (4) की आयत 12 में “वसिय्यतिन यूसा बिहा अवदेन” में 'यूसा' को 'मन्नी लिल फ़ाइल' भी सुना है तो आलिमों के सर्किल में इस को उसी तरह कुबूल किया गया जिस तरह पैग़म्बर सल्ल. की दूसरी हदीसे कुबूल की जा रही थीं। इसकी वजह भी साफ़ थी। वह अगर कुरआन के मामले में इन ख़बरों को कुबूल न करते तो पैग़म्बर सल्ल. के इज्तेहादों और फ़ैसलों और आपने जो कुछ समझाया और खोल कर बयान किया, और आपके 'उस्वा हसना' (पाकीज़ा व्यवहार) के

सम्बंध में जो रिवायतें थीं उनको भी कुबूल करने के लिए उनके पास कोई आधार नहीं रहता, सिवाय इसके किसी 'नस' (कुरआन व सुन्नत की स्पष्ट बात) से इस फ़र्क का आधार बताया जा सके।

कुरआन की क़िरअत (पढ़ने का ढंग) एक से अधिक होने की बात तीबिर्न (सहाबियों से दीन सीखने वाले आलिमों) की इसी राय के आधार पर चली। फिर ज़्यादा समय नहीं बीता कि क़िरअत का ज्ञान रखने वाले जो ख़ास आलिम मुसमलानों में पैदा हो रहे थे उनमें कुछ ऐसे लोग भी मशहूर होने लगे जिन्होंने केवल इस पर बस नहीं किया कि अरब वासियों के लहजे और पढ़ते समय अक्षरों को खोलना या दबाना या एक दूसरे में मिलाना या ठहरना या जल्दी से पढ़ना जैसे मामलों में उनके तरीकों के हिसाब से कुरआन पढ़ना सीख लें, बल्कि इससे आगे बढ़ कर कुरआन के सम्बंध में ख़ास इल्म की उन रिवायतों में से जिनका ज़िक्र उपर हुआ कुछ को कुछ पर प्राथमिकता देकर उन्होंने अपनी एक ख़ास क़िरअत भी बना ली जो उसी तरह उनके नाम से मशहूर हो गयी जिस तरह इमाम मालिक, इमाम शाफ़ई और दूसरे इमामों की फ़िक्ह उनके नाम से मशहूर है। क़िरअत का इल्म रखने वाले इन माहिरों को इसी आधार पर "अस्हाबे इख़्तैयार" (इख़्तैयार रखने वाले लोग) कहा जाता है। इसका नतीजा यह हुआ कि और यही होना चाहिए था कि इल्म की चाह रखने वाले लोग उनके इस 'इख़्तैयार' की तालीम लेने के लिए उनके पास जाने लगे, बिल्कुल उसी तरह जिस तरह वो फ़िक्ह के इमामों से उनकी फ़िक्ह और हदीस के इमामों से हदीस सीखने के लिए उनके पास जाते थे। यही नहीं, बार बार ऐसा भी हुआ कि उन्होंने या उनके शागिर्दों (शिष्यों) में से किसी ने उस ज़माने में इल्म के लिए मशहूर बड़े केन्द्रों (शहरों) जैसे मक्का, मदीना, कूफ़ा, बसरा और दमिश्क़ वगैरह में से किसी शहर को अपना स्थाई ठिकाना बना लिया तो उस शहर के आलिमों और क़ारियों (कुरआन को पढ़ने वालों) में उनके इख़्तैयार को ऐसी लोकप्रियता मिल गयी कि उसके सम्बंध में कहा जाने लगा कि उस शहर के लोग उनकी क़िरअत पर हैं। ऐसा समझने वाले लोगों से अभिप्राय आम लोग नहीं बल्कि आलिम और क़ारी थे। आम लोग इस तरह की चीज़ों को इस तरह नहीं अपनाते या छोड़ते। चुनांचि यही वजह है कि यह स्थिति बदलती भी रहती थी और उसी शहर के आलिम लोग कुछ समय बाद किसी दूसरे क़ारी की क़िरअत को अपना लेते थे और यही वजह है कि इल्म के इन ख़ास शहरों (मरकज़ों) के बाहर पूरे मुस्लिम जगत में न कोई दूसरी क़िरअत कहीं मिलती है और न इस तरह से किसी क़िरअत को अपनाने या छोड़ने का कोई निशान कहीं ढूंढा जा सकता है। इससे अलग केवल एक जगह 'क़ैरवान' है जहां क़ाज़ी अब्दुल्लाह बिन तालिब ने तीसरी सदी हिजरी के अन्त में यह हुक्म जारी किया कि लोगों को केवल 'नाफ़े' की क़िरअन पढ़ाई जाएगी। लिहाज़ा, आम मुसलमान भी इसके बाद क़ैरवान और उसकी देखा देखी पश्चिम के कुछ इलाकों में इसी क़िरअत के अनुसार कुरआन पढ़ने के लिए मजबूर हो गए और आज तक पढ़ रहे हैं। इस हुक्म की वजह शायद यह बनी कि ये लोग इमाम मालिक की फ़िक्ह पर चलने वाले लोग थे और इमाम मालिक के बारे में हम उपर बयान कर चुके हैं कि क़िरअत में नाफ़े के इख़्तैयार को प्राथमिकता देते थे।

यही मामला कुछ छोटी छोटी बस्तियों में आलिमों के प्रभाव में हुआ। लेकिन ये कुछ थोड़ी सी ही जगहें थीं और इस समय भी कहीं कहीं मौजूद हैं। इनके सिवा बाक़ी दुनिया में आम मुसलमान कभी इन बदलावों से प्रभावित नहीं हुए और न आलिमों ने उन्हें प्रभावित करने की कोशिश ही की। दोनों अपने अपने तरीके पर चलते रहे। इस तरह तफ़सीर, हदीस,

फ़िक्ह और दूसरे उलूम में कुरआन की अलग अलग क़िरातों से फ़ायदा उठाने की परम्परा सदियों तक बग़ैर रुके चलती रही और आज भी बड़ी हद तक बनी हुई है। आलिम लोग अपनी चर्चाओं, रचनाओं, बैठकों और मदरसों में इसका इज़हार करते और क़ारी लोग आज भी सात, दस, बल्कि इससे भी अधिक क़िरातों पर कुरआन की तिलावत (उच्चारण) का प्रदर्शन करते हैं। लेकिन हर आदमी देख सकता है कि आम मुसमलानों में प्रचलित कुरआन एक ही है। उन्होंने इसे आम सहाबियों से लिया था और इमाम शाफ़ई की समझ के अनुसार पीढ़ी दर पीढ़ी आम लोगों को पहुंचाते रहे हैं। इसमें शक नहीं कि इसे 'हफ़स' की रिवायत भी कहा जाता है, मगर इससे कोई ग़लतफ़हमी नहीं होना चाहिए, इसलिए कि एक चीज़ केवल क़िरात है और एक उसमें अरब वासियों के लहजे की तकनीकी बारीकियों के लिहाज़ से अदा करने की कोशिश है, जिससे कलाम की मंशा में कोई फ़र्क़ नहीं आता। इस कुरआन में यही दूसरी चीज़ है जो 'हफ़स' की रिवायत से ली जाती है और इसी आधार पर इसे उनसे जोड़ा भी जाता है। उन्होंने इसकी शिक्षा अपने उस्ताद आसिम से ली थी और आसिम इस कला में मशहूर ताबिई अबु अब्दुर्रहमान अलसलमी के शागिर्द थे जो लगभग चालीस वर्ष तक कूफ़ा में इसकी यह तकनीकी बारीकियां तालिबों को सिखाते रहे। उनके बारे में "सबअ क़िरात" (सात क़िरातों) के सबसे पहले संकलनकर्ता अबु बक्र बिन मुजाहिद ने कहा है कि वह अपना कोई इख़्तियार नहीं रखते बल्कि वही क़िरात पढ़ाते थे जिस पर हज़रत उस्मान रज़ि. ने लोगों को जमा करने की कोशिश की थी। उन्होंने लिखा है:

“सबसे पहले जिसने कूफ़ा में इस क़िरात की शिक्षा दी जिस पर उस्मान रज़ि. ने लोगों को जमा किया था वह अबु अब्दुर्रहमान असलमी ही थे” (अलसबअतु फ़ी क़िरात, अबु बक्र बिन मुजाहिद 1/67)।

यह वही बुजुर्ग हैं जिन्होंने अलग अलग क़िरातों का अनुसरण देख कर लोगों को आगाह किया था कि

अबु बक्र व उमर, उस्मान, ज़ैद बिन साबित और तमाम मुहाजिर व अंसार मुसलमानों की क़िरात एक ही थी। वह सामान्य क़िरात के अनुसार ही कुरआन की तिलावत करते थे। यह वही क़िरात है जिस पर रसूल सल्ल. ने अपनी वफ़ात के वर्ष फ़रिश्ता जिब्रैल को दो बार कुरआन सुनाया। आख़री समय की इस क़िरात में ज़ैद बिन साबित भी मौजूद थे। दुनिया से जाने तक वह लोगों को इसी के मुताबिक़ कुरआन पढ़ाते रहे। (अलबुरहान, अलज़रकशी 1/331)।

यही क़िरात है जिस पर अब हमारे कुरआन की किताब लिखी हुई है। तारीख़ के पत्रों से कोई छोटा सा भी सुबूत इस बात का नहीं दिया जा सकता कि तमाम मुसमलमानों को एक क़िरात पर इकट्ठा करने के लिए हज़रत उस्मान रज़ि. और हज्जाज बिन यूसुफ़ की कोशिशों के बाद इस क़िरात के किसी आलिम ने अपने प्रभाव से या किसी हाकिम या क़ाज़ी ने शासन की ताक़त से कभी मुसलमानों के बीच प्रचलित करने की कोशिश की हो, जिस तरह कि पश्चिम में नाफ़े की क़िरात के मामले में की गयी। इसे रसूलुल्लाह ने और आपके बाद आपके ख़लीफ़ा बनने वालों ने प्रचलित किया और यह इसी तरह प्रचलित है। चुनांचि, मुसलमानों के क़ारी लोग जब अपने इख़्तियारात संकलित कर रहे थे और उनके मुहद्दीसीन जब ख़ास इल्म की रिवायतें जमा कर रहे थे और उनके फ़क़ीह और मुफ़स्सिर जब उनकी मदद से कुरआन की समस्याएं सुलझा रहे थे उस समय भी पूरी दुनिया में मुसलमान इसी की तिलावत कर रहे थे। पहली सदी हिजरी के

अन्त में मुसलमान भारत में दाखिल हुए तो इसी की तिलावत करते हुए आए और आठवीं सदी के अन्त में जब जावा, सुमात्रा, मलाया और पूर्वोत्तर के दूसरे द्वीपों के साहिल पर उतरे तो उस समय भी उनके हाथों में यही कुरआन था और अल्लाह ने चाहा तो क्रियामत तक यही रहेगा।

यहां कोई आदमी यह सवाल कर सकता है कि मुसमलानों के इल्म ने अगर इन सब तथ्यों के बावजूद ख़ास इल्म की रिवायतों को इस मामले में कुबूल किए रखा है तो फ़राही मदरसे के आलिमों का रवैया इससे अलग क्यों है। हमारा जवाब यह है कि बड़े विश्वसनीय लोगों के अख़बार (रिवायत) को रद करना किसी आलिम के लिए आसान नहीं है, इसके लिए 'नस' (कुरआन या सुन्नत का स्पष्ट सुबूत) चाहिए था। चुनांचि इस मुद्दे से सम्बंधित सूरह क्रियामह की आयतों का सही बोध अगर शुरू में स्पष्ट हो जाता तो सारे आलिम और फ़क़ीह और मुफ़स्सिर भी शायद वही करते जो फ़राही मदरसे के आलिम कर रहे हैं। इमाम हमीदुद्दीन फ़राही ने इन आयतों का मतलब स्पष्ट कर दिया है, लिहाज़ा वह 'नस' मिल गयी जिसके आधार पर अब कहा जा सकता है कि कुरआन की क़िरअत से सम्बंधित तमाम ख़बरें अगर सही भी हों तो कुरआन के सम्बोधितों के लिए आख़री समय की क़िरअत से वो सब मंसूख हो गयी हैं इलिए किसी तरह कुबूल नहीं की जा सकतीं। कुरआन का हुक्म है कि संकलन के बाद इसकी जो क़िरअत अल्लाह तआला की तरफ़ से की जाएगी मुसलमान क्रियामत तक उसी की पैरवी करेंगे और कोई मुसलमान कुरआन के इस हुक्म से हटने की ज़ुरत नहीं कर सकता। इरशाद फ़रमाया है:

“तुम इस (कुरआन) को जल्द पा लेने के लिए अपनी ज़बान को इस पर न चलाओ (यह इसी तरह उतरेगा, तुम मुतमइन रहो), इसका जमा करना और सुनाना, सब हमारी ज़िम्मेदारी है। इसलिए जब (उस वक़्त) हम इसको पढ़ें तो उसकी क़िरअत की पैरवी को “(“अलक्रियामह” 75:16-18)